शोध पत्र/Research Paper

भावी कौशल विकास शिक्षा नीति की अवधारणा हेतु 500 से 1000 ईस्वी में प्रचलित भारतीय ज्ञान प्रणाली का अध्ययन : साहित्यिक समीक्षा

Study of Prevailing Indian Knowledge System During 500-1000 A.D. to Conceptualize Prospective Skill Education Policy : Literature Review

अरुणा[1] एवं आर. एस. राठौड़[2]
Aruna[1] and R.S. Rathore[2]
[1]Ph.D. Research Scholar, Shri Vishwakarma Skill University, Palwal, Haryana
[2]Dean-Academics, Shri Vishwakarma Skill University, Palwal, Haryana
[1]arunakapil123@yahoo.com, [2]randhir.rathore@svsu.ac.in
https://doi.org/10.5281/zenodo.15564223

सारांश

कुशल एवं दक्ष कार्यकर्ता किसी भी सभ्यता के विकास का निर्माण-पथ हैं। साथ ही, कार्यप्रवीण एवं निपुण कार्यबल निर्माण आज के युग की विकट चुनौती है। प्राचीन भारतीय कारीगरी की विशेषज्ञता को उजागर करने वाली कलाकृतियों ने हमेशा से विश्व को चकित किया है। यह शोध पत्र "भावी कौशल विकास शिक्षा नीति की अवध ारणा हेतु 500 से 1000 ईस्वी में प्रचलित भारतीय ज्ञान प्रणाली के अध्ययन" की साहित्य समीक्षा पर आधारित है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति बहुमुखी एवं विस्तृत थी जो विषयों की विविधता से समृद्ध, दक्ष कौशल प्रणाली, उन्नत तकनीकों एवं यथोचित कार्य-विधियों से सम्पन्न थी। इस काल में औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा का संगम था। एकल गुरूकुल से लेकर सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों का प्रचलन था। विषयों को वृहद् रूप से, उनके ज्ञान केंद्रित तथा दक्षता केंद्रित होने के आधार पर, "विद्या" तथा "कला" में विभेदित किया गया था। विषयों का परिसर खगोल शास्त्र से गणित तक, दर्शनशास्त्र से औषधि विज्ञान तक तथा साहित्य से व्याकरण एवं नीति तक विस्तृत था। विकसित स्मरण क्षमता, आलोचनात्मक चिंतन शैली तथा तर्कशील चिंतन शैली आदि कौशलों का विशेष सम्मान था।

पूर्णात्मक शैली द्वारा सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व एक ऐसे व्यक्ति को साकार रूप देता था जो न केवल ज्ञानवान था, अपितु नैतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित भी था ताकि वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलतापूर्वक अग्रसर हो सके।

Abstract

Skilled and expert worker is the roadmap to development of any civilisation. At the same time proficient and skilful workforce generation is the biggest challenge in the present era. The artifacts revealing the expertise of ancient Indian workmanship has always dazzled the world. This research paper is based on the review of literature of Study of Prevailing Indian Knowledge System during 500 to 1000 A.D. to Conceptualise Prospective Skill Education Policy. Ancient knowledge system was multifaceted and diverse which was enriched with a variety of subjects, expert skill system, advanced techniques and apt methodologies. There was a blend of formal and informal education during this period. Educational institutions ranged from singly owned gurukuls, to world famous Universities. Subjects were broadly divided into Vidya, and Kala, based on their knowledge centric and skill centric nature. Subjects had a wide range from Astronomy to Mathematics and Philosophy to Medicine and Literature to Grammar and Ethics. Skills such as well & developed memorisation capabilities, critical thinking and debate were highly valued.

A personality developed through holistic approach, nurtured well & rounded individuals who were not only knowledgeable but also morally and spiritually advanced to stride successfully in any field of life.

मुख्य शब्द: कौशल शिक्षा, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, शिक्षा नीति।
Key Words: Skill Education, Ancient Indian Education System, Skill Education Policy.

परिचय

व्यवसाय एक वयस्क व्यक्ति के लिए, अपने एवं अपने परिवार को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनिवार्य है। वहीं अपने कार्य में प्रवीणता एवं दक्षता; व्यक्ति को मानसिक संतोष, सामाजिक ख्याति तथा आर्थिक विकास की नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने में सक्षम है। प्रत्येक व्यक्ति की व्यवसायिक सफलता का स्तर सम्मिलित रूप से संपूर्ण राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक दशा एवं दिशा को निर्धारित करता है ऐसे में किसी क्षेत्र में अपनी भावी पीढ़ी के सफल एवं सतत विकास के लिए बालकों एवं किशोरों को किस प्रकार के नैतिक मूल्य, व्यवसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जा रहा है यह न केवल एक व्यक्ति, उसके परिवार अपितु उसके राष्ट्र, समस्त मानव जाति एवं समस्त पृथ्वी के अस्तित्व को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राचीन भारत की यह विशेषता रही है कि यहाँ का संपूर्ण शिक्षा ढाँचा कार्य प्रमुख होने के साथ-साथ ''वसुधैव कुटुम्बकम" अर्थात् पूरी पृथ्वी एक परिवार है की आधारभूत नीति को समेटे हुए थे। इस कारण से भारतीयों का प्रत्येक कार्य:- शिक्षा, व्यवसाय तथा जीवन के दैनिक क्रिया-कलाप; चिरस्थायी जीवन निर्वहन तथा अस्तित्व की ओर उन्मुख था।

शिक्षा निर्गम, शिक्षण एवं आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 500 से 1000 ईस्वी का मध्य-प्राचीन युग भारत में अमृत काल था। यही वह समय था जब भारत में विश्व विख्यात विश्वविद्यालय अपने चरम पर थे नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय अंतरराष्ट्रीय शिष्यों के लिए आकर्षण का केंद्र थे। भारतीय गुरू पूरे संसार में अपने नाम से पहचाने जाते थे। भारतीय गुरुओं द्वारा निष्पादित नियम तथा उनके श्रेष्ठ शिष्यों द्वारा अपने-अपने विषयों में प्रस्तुत किए गए अग्रणी लेख, पुस्तकें तथा प्रतिपादित सूत्र, शिक्षा के क्षेत्र में आज भी अनुसरणीय है। उक्त काल में भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व पटल पर सबसे अग्रणी थी। अत: उस काल खंड के व्यावसायिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रणाली का अध्ययन अति महत्वपूर्ण हो जाता है।

जे.सी. अग्रवाल ने अपनी पुस्तक "द प्रोग्रेस आफ एजुकेशन इन फ्री इंडिया" में भारत में पौराणिक काल (वर्ष 500-1200 ईस्वी) में शिक्षा को वर्णित करते हुए लिखा है कि इस काल में उच्च शिक्षा के लिए संगठित संस्थानों का उदय उल्लेखनीय है बौद्ध मठ, विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित हुए और कुछ ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की जैसे नालंदा और विक्रमशिला। भारत में हिंदू देवालयों में कॉलेज आरंभ किए गए। इन संगठित (कॉर्पोरेट) संस्थानों में एक नया शैक्षणिक वातावरण था, जिसमें कई शिक्षक और सैकड़ों छात्र एक साथ रहते थे और विभिन्न विषयों का अध्ययन करते थे, जिसका पाठ्यक्रम प्रशासकीय निकायों द्वारा निर्धारित किया जाता था। इससे उच्च शिक्षा के कार्य को सहारा मिला और कई महान विद्वान और लेखक उत्पन्न हुए। तथापि, विशेषज्ञता बहुत आगे बढ़ गई। भूतकाल के प्रति श्रद्धा इतनी गहरी हो गई कि नई शिक्षा को प्रमाणिक साहित्य या परंपरागत सिद्धांतों के आधार पर स्वीकार या अस्वीकार किया जाता था। जिज्ञासा की प्रवृत्ति, रचनात्मक सोच एवं खुला, स्वतंत्र मस्तिष्क अब सामान्य थे।

डॉ. अरुण कुमार सिंह के लेख: "इंडस्ट्रियल, टेक्निकल एंड वोकेशनल एजुकेशन इन एंशिएंट इंडिया: विथ स्पेशल रेफ्रेंस टू आर्टीसनस एंड क्राफ्टमैन", 2018 के अनुसार प्राचीन भारत में ललित कला तथा शिल्पकला उद्योगों से जुड़ी कलाओं की एक लंबी सूची है जैसे कुंभकारी, बढ़ई, रंगरेजी, वस्त्र तथा परिधान, दोनों ऊनी तथा सूती, रत्न, धातु उदाहरणत: स्वर्ण, चाँदी, लोहा तथा टिन। मिलिंदपंहा में साठ व्यापारों का वर्णन है, जो विभिन्न प्रकार की शिल्पों से संबंधित हैं। अधिकांश व्यापारों और शिल्पों की मूल रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि थी और शहरी क्षेत्र में भी विकास हुआ। बौद्ध ग्रंथ में ऊँचे भवन, सोने के आभूषण, तेल, चीनी, संगीत उपकरण,

मूल्यवान धातुओं और पत्थरों के बर्तन, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों से बने तथा विभिन्न रंगों में रंगे विभिन्न प्रकार के परिधान, फूलों से माला बनाने का शिल्प, सुगंध और अन्य वस्तुओं के विवरण दिए गए हैं, जो संभवत: इसका सूचक हैं कि सोनारी, बुनाई, रंगाई, कपड़ा सिलाई, माला बनाने की कला, इत्र आदि गुप्त काल में अपने विकसित स्तर पर फलीभूत हो रही थीं। कुषाण काल शिल्प और कला के, शिक्षा में प्रसरण को दिखाता है। वात्स्यायन की रचना 'कामसूत्र' भी गुप्त काल की है जो शहरी निवासियों और गांववालों द्वारा प्रोत्साहित अनेक कलाओं और शिल्पों की तस्वीर देता है।

शिल्पकारों और कलाकारों के लिए प्रशिक्षण, अपरेंटिसशिप का मुख्य तरीका था। यह तरीका प्राचीन भारत भर में प्रसिद्ध था। प्रवेश वैदिक काल में अपरेंटिसशिप बहुत प्रसिद्ध था और प्रवेश के लिए एक नियत तरीका था तथा एक उद्योग या शिल्प में प्रवेश के लिए नियत नियमावली द्वारा नियंत्रित था। प्रवेश के लिए विभिन्न सिद्धांतों का निर्वाह किया जाता था। यदि कोई युवक अपनी शिल्प की कला में प्रारंभ करना चाहता है, तो पहले उसे अपने संबंधियों की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए और फिर अपने गुरु/प्रशिक्षक के साथ रहने के लिए पहले से ही उसके प्रशिक्षण या अपरेंटिसशिप की अवधि निर्धारण करके आगे बढ़ना होगा। वैदिक और बौद्ध काल में अधिकतर देखा जाता था कि गुरू को अपने छात्र को अपने घर पर ही प्रशिक्षण देना होता था जहां उसे उसका भोजन और आवास प्रदान किया जाता था। गुरू अपने छात्र से अपने पुत्र की भाँति व्यवहार करता था।

प्राचीन भारत में शिल्पकारों के प्रशिक्षण को महत्व दिया गया था। शिल्पकार के लिए आवश्यक सुविधाएँ उचित प्रकार से उपलब्ध थीं। अपरेंटिस अपना रहने का भोजन अपने गुरु से प्राप्त करता था और प्रशिक्षण पूर्ण होने के बाद गुरु के साथ रहने का निर्णय लेने में स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करता था। विशेषज्ञता में कारक: शिल्प और कला शिक्षा के विकास के प्रोत्साहन के कारकों में पहला शिल्पकारों को कच्चे माल की जानकारी और उपयोग और उपकरण की खोज है। अन्यत्र क्षेत्रों की भाँति भारतीय शिल्पकारों ने भी प्रयत्न एवं भूल विधि के माध्यम से प्रगति की और अधिकाधिक प्रकृति को तकनीकी उपकरणों के नियंत्रण में लाने का प्रयास किया। दूसरा गिल्ड संगठन है जो उनकी स्थायित्व की योजना के साथ, शिल्प कौशल को स्थायी बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। तीसरा बाजार का विस्तार तथा अंत में, राज्य का संरक्षण और सुरक्षा है।

श्रुति आनंद के लेख: "प्राचीन भारत में शैक्षिक मूल्यांकन की प्रक्रिया एवं उसका आधुनिक परिप्रेक्ष्य" 2019, के अनुसार वैदिक काल में व्यावसायिक शिक्षा के लिए छात्र मूल्यांकन धार्मिक रीति-रिवाजों के पर आधारित था। बुद्ध सूत्रों एवं उपनिषद में प्राप्त उल्लेख के अनुसार गुरु छात्रों के मध्य विषय रखता था तथा अवलोकन एवं तुलना के आधार पर मूल्यांकन करता था। मन्द अथवा निष्क्रिय छात्रों को ध्यान से सुनने तथा समझने का निर्देश देते हुए नए तथ्यों के माध्यम से, जो वे पहले से जानते थे, उनसे तुलना करके उन्हें पुन: समझाने का प्रयास करते थे। इस प्रकार वे अच्छे तथा कमजोर छात्रों के बीच में तुलना करके अपनी शिक्षण विधियों का भी मूल्यांकन करते थे तथा उसे पुन: परिवर्तित कर मन्द छात्रों के लिए नवीन तकनीकों का प्रयोग कर उन्हे शिक्षण प्रदान करते थे। मूल्यांकन का एक और उदाहरण जो सतत था इस रूप में प्राप्त होता है कि प्राचीन काल में छात्रों की परीक्षा प्रतिदिन ली जाती थी और दूसरा पाठ तब तक आरंभ नहीं किया जाता था जब तक पहला पाठ पूर्णतया याद नहीं हो जाता था। प्राचीन काल में परीक्षा का कोई निश्चित अंतराल नहीं होता था और न ही सामूहिक कक्षोन्नति होती थी। प्राचीन काल में वार्षिक परीक्षा जैसा कोई प्रावधान नहीं था। बुद्धिमान छात्र समय से अपना पाठ समाप्त कर लेते थे। इस काल में वार्षिक या समयावधि की परिक्षाएँ न हो कर केवल अध्यापक की संतुष्टि पर मौखिक परीक्षाएँ होती थी। प्राचीन काल में शलाका परीक्षाएँ होती थीं जिसमें यादृच्छिक रूप से किसी भी प्रश्न को पूछ लिया जाता था। जिसमें समाज के विद्वान सम्मिलित होते थे और वे प्रश्न पूछते थे। इसे ही समावर्तन संस्कार के नाम से जाना जाता है। इस परीक्षा के अन्तर्गत यदि छात्र अपने उत्तर से विद्वत् जन को संतुष्ट कर देता था उसे 'उत्तीर्ण की डिग्री प्रदान की जाती थी।

प्राचीन काल में समेकित शिक्षा व्यवस्था थी जिसमें सामान्य विद्यालय में भी मन्द या सुस्त छात्रों को अध्ययन का अवसर दिया जाता था। ए.एस. अल्टेकर के अनुसार सामान्य विद्यालयों में सुस्त या मन्द छात्रों को अनेक

प्रयास एवं परीक्षणों के माध्यम से मूल्यांकन उपरांत, सुधार न होने की स्थिति में अपनी पढ़ाई को रोकने की सलाह दी जाती थी। मूल्यांकन का एक अन्य उदाहरण नालन्दा विश्वविद्यालय का है, जहाँ प्रवेश हेतु प्रवेशार्थियों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण प्रवेश परीक्षा ली जाती थी। इस परीक्षा में मूल्यांकन के पश्चात दस में से तीन ही छात्र अर्ह पाए जाते थे। नालन्दा तथा विक्रमशिला में प्रवेश परीक्षा के मूल्यांकन हेतु विशेष प्रोफेसर दल नियुक्त किया जाता था जो छात्रों की ग्राह्य क्षमता, कार्य क्षमता, उसकी यथार्थता और ईमानदारी का मूल्यांकन करते थे। इन कसौटियों पर उत्तीर्ण छात्रों को ही संस्था में प्रवेश दिया जाता था।

महेश एम. गोंग इत्यादि, के लेख "इंडियन एजुकेशन: एंशिएट, मेडिवल एंड मॉडर्न", 2020 के अनुसार प्राचीन भारत में दो शिक्षण पद्धतियाँ विकसित थीं- वैदिक तथा बौद्ध। वैदिक पद्धति में शिक्षण का माध्यम संस्कृत तथा बौद्ध पद्धति में पाली भाषा थी। प्राचीन शिक्षा, छात्रों को मुख्यत: नम्रता, सत्यनिष्ठा, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी रचनाओं को सम्मान देने पर केंद्रित थी। शिक्षा अधिकांश आश्रमों, गुरुकुलों, मंदिरों, घरों में दी जाती थी। शिक्षा अधिकांश जंगलों में खुले आसमान के नीचे दी जाती थी, जिससे छात्रों में ताजगी तथा जीवंतता रहती थी। शिक्षा विशेषत: सांस्कृतिक, चारित्रिक और व्यक्तित्व विकास तथा उदार आदर्शों के विकास और संवर्धन पर केंद्रित थी। पाठ्यक्रम में चार वेद, चार दर्शन और छ: वेदांग (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद; मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) चौदह विद्या तथा उपनिषद् और तर्क शास्त्र शामिल थे। बीजगणित, ज्यामिति एवं व्याकरण को विशेष महत्व दिया जाता था। पाठ्यक्रम उस युग की मांगों के अनुसार सृजित किया गया था। पाठ्यक्रम परिवर्तनशील था न कि स्थैतिक; यह विभिन्न चरणों से मिलकर बनाया गया था।

भावना सेन और अमित कुमार दवे, के लेख 'रोल आफ वोकेशनल एडुकेशन फ्राम एंशिएट इंडियन एजुकेशन सिस्टम टू प्रेजेन्ट एजुकेशन सिस्टम', 2022 के अनुसार प्राचीन काल में शिक्षा की आधारभूत विधि पाठ वाचन या मौखिक विधि थी। इसी कारण इस विधि से शिक्षण तथा सीखने की प्रक्रिया में त्रुटि या गलती से बचने के लिए विभिन्न तरीके विकसित किए। अतएव प्राचीन काल में शिक्षा या ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक विधि से स्थानांन्तरित किया जाता था। प्रारंभिक दिनों में शिक्षण के अन्य तरीके वाद-विवाद तथा चर्चा थे। इस विधि में ज्ञानी व्यक्ति कुछ स्थानों पर इकट्ठे होते थे और परस्पर विभिन्न धार्मिक, तात्त्विक और अन्य समस्याओं पर नाटकीय रूप से चर्चा तथा वाद-विवाद करते थे।

मिश्रा, एन. तथा ऐथल, पी. एस., (2023), 'एंशिएट इंडियन एजुकेशन: इट्स रिलावैन्स एण्ड इम्पॉर्टेन्स इन दी मॉडर्न एजुकेशन सिस्टम' के अनुसार रामायण और महाभारत जैसे विशेष ग्रंथों में बिखरे हुए तथ्य हमें उस काल की सैन्य शिक्षा के अंदर झलकियाँ प्रदान करते हैं। आधुनिक विश्वविद्यालय संरचना में शब्द कुलपति (चांसलर) और उपकुलपति (वाइस-चांसलर) की व्युत्पत्ति भी इन ग्रंथों में उल्लिखित हैं। कुलपति को 10,000 छात्रों के शिक्षागुरु के रूप में प्रयोग किया गया था। सैन्य विज्ञान को सामान्यत: धनुर्वेद कहा जाता था। इस काल में सैन्य शिक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी। कई संस्थाएँ जैसे की तक्षशिला, उज्जैन, नालंदा, बनारस और मदुरै स्थापित हुई। छठी सदी के प्रसिद्ध चिकित्सा विशेषज्ञ जीवक, सातवीं सदी के महान व्याकरणविद पाणिनि, और चौथी सदी के अर्थशास्त्र के प्राध्यापक कौटिल्य तक्षशिला के छात्र थे। संक्षिप्त में, इन ग्रंथों में उल्लिखित शिक्षा मुख्यत: व्यावसायिक प्रशिक्षण था, जो मूल रूप से व्यावहारिक और अनुप्रयोगशील था।

निष्कर्ष

मध्यप्राचीन भारत में पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को मानसिक और शारीरिक रूप से विकसित करना था। शिक्षा प्रयोगात्मक थी और व्यवहारिक भी थी। 500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक प्राचीन भारत में व्यवसायिक शिक्षा बहुत विकसित और महत्वपूर्ण थी। व्यापारिक नौकरियों और उद्यमिता के क्षेत्र में कौशल विकसित हुए और विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में शिक्षा की अनुमति दी गई। विद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों ने उद्यमिता की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिया। उस समय के उच्च शिक्षा संस्थान, जैसे तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशीला, वल्लभी, पुष्पगिरी, आदि, अपनी अच्छी शिक्षण प्रणाली और अपने विषय में प्रवीण शिक्षकों के कारण पूरी दुनिया

में प्रसिद्ध थे। उस समय इन विश्वविद्यालयों में भारत के अलावा जापान, चीन, तिब्बत, कोरिया, इंडोनेशिया और तुर्की से भी विद्यार्थी आते थे। जहां विद्यार्थियों को आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, खगोलशास्त्र, बीजगणित, ज्यामिति, व्याकरण आदि विषयों में प्रशिक्षित किया गया था। छात्रों ने अपने शिक्षकों द्वारा सिखाई गई अवधारणाओं को गहराई से समझने और इसे सीखने के लिए नए तरीके खोजने की क्षमता प्राप्त की।

संदर्भ

1. Dr. Arun Kumar Singh, Industrial, Technical and Vocational Education in Ancient India: With Special Reference to Artisans and Craftsmen, (2018) https://www.ijmra.us@project:20doc/2018/IJRSS_FEBRUARY2018/IJRSS Feb 18 Beena By Kam.pdf.
2. Kiran Srivastava, 'Role of Philosophy of Education in India'- Tattva-Journal of Philosophy, (2017), Vol. 9, No.2, 11-21 ISSN 0975-332X https://doi.org/10.12726/tjp.18.211.
3. M. Ghonge, Mangesh, et al. 'Indian Education: Ancient, Medieval and Modern'. Education at the Intersection of Globalization and Technology, Intech Open, 7 Apr. (2021). Crossref, doi:10.5772/intechopen.93420. https://www.intechopen.com/chapters/73290.
4. Bhavana Sen, Amit Kumar Dave, 'Role of Vocational Education from Ancient Indian Education System to Present Education System and Its Implications'. International Research Journal of Commerce Arts and Science.
5. http://www.casirj.com CASIRJ Volume 13 Issue 1 [Year & 2022] ISSN 2319 – 9202.
6. Mishra, N., & Aithal, P. S., Ancient Indian Education: It's Relevance and Importance in the Modern Education System. International Journal of Case Studies in Business, IT, and Education (IJCSBE), (2023), 7(2), 238-249. DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo-796493.

❐